गुरु पूर्णिमा संदेश

आत्मस्वरुप का ज्ञान पाने के अपने कर्त्तव्य की याद दिलाने वाला, मन को दैवी गुणों से विभूषित करनेवाला, सदगुरु के प्रेम और ज्ञान की गंगा में बारंबार डुबकी लगाने हेतु प्रोत्साहन देनेवाला जो पर्व है - वही है 'गुरु पूर्णिमा' ।
भगवान वेदव्यास ने वेदों का संकलन किया, १८ पुराणों और उपपुराणों की रचना की। ऋषियों के बिखरे अनुभवों को समाजभोग्य बना कर व्यवस्थित किया। पंचम वेद 'महाभारत' की रचना इसी पूर्णिमा के दिन पूर्ण की और विश्व के सुप्रसिद्ध आर्ष ग्रंथ ब्रह्मसूत्र का लेखन इसी दिन आरंभ किया। तब देवताओं ने वेदव्यासजी का पूजन किया। तभी से व्यासपूर्णिमा मनायी जा रही है। इस दिन जो शिष्य ब्रह्मवेत्ता सदगुरु के श्रीचरणों में पहुँचकर संयम-श्रद्धा-भक्ति से उनका पूजन करता है उसे वर्षभर के पर्व मनाने का फल मिलता है।
और पूनम (पूर्णिमा) तो तुम मनाते हो लेकिन गुरुपूनम तुम्हें मनाती है कि भैया! संसार में बहुत भटके, बहुत अटके और बहुत लटके। जहाँ गये वहाँ धोखा ही खाया, अपने को ही सताया। अब जरा अपने आत्मा में आराम पाओ।

हरिहर आदिक जगत में पूज्य देव जो कोय ।
सदगुरु की पूजा किये सबकी पूजा होय ॥

कितने ही कर्म करो, कितनी ही उपासनाएँ करो, कितने ही व्रत और अनुष्ठान करो, कितना ही धन इकट्ठा कर लो और् कितना ही दुनिया का राज्य भोग लो लेकिन जब तक सदगुरु के दिल का राज्य तुम्हारे दिल तक नहीं पहुँचता, सदगुरुओं के दिल के खजाने तुम्हारे दिल तक नही उँडेले जाते, जब तक तुम्हारा दिल सदगुरुओं के दिल को झेलने के काबिल नहीं बनता, तब तक सब कर्म, उपासनाएँ, पूजाएँ अधुरी रह जाती हैं। देवी-देवताओं की पूजा के बाद भी कोई पूजा शेष रह जाती है किंतु सदगुरु की पूजा के बाद कोई पूजा नहीं बचती।

सदगुरु अंतःकरण के अंधकार को दूर करते हैं। आत्मज्ञान के युक्तियाँ बताते हैं गुरु प्रत्येक शिष्य के अंतःकरण में निवास करते हैं। वे जगमगाती ज्योति के समान हैं जो शिष्य की बुझी हुई हृदय-ज्योति को प्रकटाते हैं। गुरु मेघ की तरह ज्ञानवर्षा करके शिष्य को ज्ञानवृष्टि में नहलाते रहते हैं। गुरु ऐसे वैद्य हैं जो भवरोग को दूर करते हैं। गुरु वे माली हैं जो जीवनरूपी वाटिका को सुरभित करते हैं। गुरु अभेद का रहस्य बताकर भेद में अभेद का दर्शन करने की कला बताते हैं। इस दुःखरुप संसार में गुरुकृपा ही एक ऐसा अमूल्य खजाना है जो मनुष्य को आवागमन के कालचक्र से मुक्ति दिलाता है।

जीवन में संपत्ति, स्वास्थ्य, सत्ता, पिता, पुत्र, भाई, मित्र अथवा जीवनसाथी से भी ज्यादा आवश्यकता सदगुरु की है। सदगुरु शिष्य को नयी दिशा देते हैं, साधना का मार्ग बताते हैं और ज्ञान की प्राप्ति कराते हैं।

सच्चे सदगुरु शिष्य की सुषुप्त शक्तियों को जाग्रत करते हैं, योग की शिक्षा देते हैं, ज्ञान की मस्ती देते हैं, भक्ति की सरिता में अवगाहन कराते हैं और कर्म में निष्कामता सिखाते हैं। इस नश्वर शरीर में अशरीरी आत्मा का ज्ञान कराकर जीते-जी मुक्ति दिलाते हैं।

सदगुरु जिसे मिल जाय सो ही धन्य है जन मन्य है।
सुरसिद्ध उसको पूजते ता सम न कोऊ अन्य है॥
अधिकारी हो गुरुदेव से उपदेश जो नर पाय है।
भोला तरे संसार से नहीं गर्भ में फिर आय है॥

गुरुपूनम जैसे पर्व हमें सूचित करते हैं कि हमारी बुद्धि और तर्क जहाँ तक जाते हैं उन्हें जाने दो। यदि तर्क और बुद्धि के द्वारा तुम्हें भीतर का रस महसूस न हो तो प्रेम के पुष्प के द्वारा किसी ऐसे अलख के औलिया से पास पहुँच जाओ जो तुम्हारे हृदय में छिपे हुए प्रभुरस के द्वार को पलभर में खोल दें।

मैं कई बार कहता हुँ कि पैसा कमाने के लिए पैसा चाहिए, शांति चाहिए, प्रेम पाने के लिए प्रेम चाहिए। जब ऐसे महापुरुषों के पास हम निःस्वार्थ, निःसंदेह, तर्करहित होकर केवल प्रेम के पुष्प लेकर पहुँचते हैं, श्रद्धा के दो आँसू लेकर पहुँचते हैं तो बदले में हृदय के द्वार खुलने का अनुभव हो जाता है। जिसे केवल गुरुभक्त जान सकता है औरों को क्या पता इस बात का ?

गुरु-नाम उच्चारण करने पर गुरुभक्त का रोम-रोम पुलकित हो उठता है चिंताएँ काफ़ूर हो जाती हैं, जप-तप-योग से जो नही मिल पाता वह गुरु के लिए प्रेम की एक तरंग से गुरुभक्त को मिल जाता है, इसे निगुरे नहीं समझ सकते.....

आत्मज्ञानी, आत्म-साक्षात्कारी महापुरुष को जिसने गुरु के रुप में स्वीकार कर लिया हो उसके सौभाग्य का क्या वर्णन किया जाय ? गुरु के बिना तो ज्ञान पाना असंभव ही है। कहते हैं :

ईश कृपा बिन गुरु नहीं, गुरु बिना नहीं ज्ञान ।
ज्ञान बिना आत्मा नहीं, गावहिं वेद पुरान ॥

बस, ऐसे गुरुओं में हमारी श्रद्धा हो जाय । श्रद्धावान ही ज्ञान पाता है। गीता में भी आता हैः

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः ।

अर्थात् जितेन्द्रिय, तत्पर हुआ श्रद्धावान पुरुष ज्ञान को प्राप्त होता है।
ऐसा कौन-सा मनुष्य है जो संयम और श्रद्धा के द्वारा भवसागर से पार न हो सके ? उसे ज्ञान की प्राप्ति न हो ? परमात्म-पद में स्थिति न हो?

जिसकी श्रद्धा नष्ट हुई, समझो उसका सब कुछ नष्ट हो गया। इसलिए ऐसे व्यक्तियों से बचें, ऐसे वातावरण से बचें जहाँ हमारी श्रद्धा और संयम घटने लगे। जहाँ अपने धर्म के प्रति, महापुरुषों के प्रति हमारी श्रद्धा डगमगाये ऐसे वातावरण और परिस्थितियों से अपने को बचाओ।

शिष्यों का अनुपम पर्व

साधक के लिये गुरुपूर्णिमा व्रत और तपस्या का दिन है। उस दिन साधक को चाहिये कि उपवास करे या दूध, फल अथवा अल्पाहार ले, गुरु के द्वार जाकर गुरुदर्शन, गुरुसेवा और गुरु-सत्सन्ग का श्रवण करे। उस दिन गुरुपूजा की पूजा करने से वर्षभर की पूर्णिमाओं के दिन किये हुए सत्कर्मों के पुण्यों का फल मिलता है।

गुरु अपने शिष्य से और कुछ नही चाहते। वे तो कहते हैं:

तू मुझे अपना उर आँगन दे दे, मैं अमृत की वर्षा कर दूँ।

तुम गुरु को अपना उर-आँगन दे दो। अपनी मान्यताओं और अहं को हृदय से निकालकर गुरु से चरणों में अर्पण कर दो। गुरु उसी हृदय में सत्य-स्वरूप प्रभु का रस छलका देंगे। गुरु के द्वार पर अहं लेकर जानेवाला व्यक्ति गुरु के ज्ञान को पचा नही सकता, हरि के प्रेमरस को चख नहीं सकता।

अपने संकल्प के अनुसार गुरु को मन चलाओ लेकिन गुरु के संकल्प में अपना संकल्प मिला दो तो बेड़ा पार हो जायेगा।

नम्र भाव से, कपटरहित हृदय से गुरु से द्वार जानेवाला कुछ-न-कुछ पाता ही है।

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥

'उस ज्ञान को तू तत्त्वदर्शी ज्ञानियों के पास जाकर समझ, उनको भलीभाँति दण्डवत्-प्रणाम करने से, उनकी सेवा करने से और कपट छोड़कर सरलतापूर्वक प्रश्न करने से वे परमात्म-तत्व को भलीभाँति जाननेवाले ज्ञानी महात्मा तुझे उस तत्त्वज्ञान का उपदेश करेंगे।' (गीताः ४.३४)

जो शिष्य सदगुरु का पावन सान्निध्य पाकर आदर व श्रद्धा से सत्संग सुनता है, सत्संग-रस का पान करता है, उस शिष्य का प्रभाव अलौकिक होता है।

'श्रीयोगवाशिष्ठ महारामायण' में भी शिष्य से गुणों के विषय में श्री वशिष्ठजी महाराज करते हैः "जिस शिष्य को गुरु के वचनों में श्रद्धा, विश्वास और सदभावना होती है उसका कल्याण अति शीघ्र होता है।"

शिष्य को चाहिये के गुरु, इष्ट, आत्मा और मंत्र इन चारों में ऐक्य देखे। श्रद्धा रखकर दृढ़ता से आगे बढ़े। संत रैदास ने भी कहा हैः

हरि गुरु साध समान चित्त, नित आगम तत मूल।
इन बिच अंतर जिन परौ, करवत सहन कबूल॥

'समस्त शास्त्रों का सदैव यही मूल उपदेश है कि भगवान, गुरु और संत इन तीनों का चित्त एक समान (ब्रह्मनिष्ठ) होता है। उनके बीच कभी अंतर न समझें, ऐसी दृढ़ अद्वैत दृष्टि रखें फिर चाहे आरे से इस शरीर कट जाने का दंड भी क्यों न सहन करना पड़े ?

अहं और मन को गुरु से चरणों में समर्पित करके, शरीर को गुरु की सेवा में लगाकर गुरुपूर्णिमा के इस शुभ पर्व पर शिष्य को एक संकल्प अवश्य करना चाहियेः 'इन्द्रिय-विषयों के लघु सुखों में, बंधनकर्ता तुच्छ सुखों में बह जानेवाले अपने जीवन को बचाकर मैं अपनी बुद्धि को गुरुचिंतन में, ब्रह्मचिंतन में

स्थिर करूँगा।'

बुद्धि का उपयोग बुद्धिदाता को जानने के लिए ही करें। आजकल के विद्यार्थी बड़े-बड़े प्रमाणपत्रों के पीछे पड़ते हैं लेकिन प्राचीन काल में विद्यार्थी संयम-सदाचार का व्रत-नियम पाल कर वर्षों तक गुरु के सान्निध्य में रहकर बहुमुखी विद्या उपार्जित करते थे। भगवान श्रीराम वर्षों तक गुरुवर वशिष्ठजी के आश्रम में रहे थे। वर्त्तमान का विद्यार्थी अपनी पहचान बडी़-बडी़ डिग्रियों से देता है जबकि पहले के शिष्यों में पहचान की महत्ता वह किसका शिष्य है इससे होती थी। आजकल तो संसार का कचरा खोपडी़ में भरने की आदत हो गयी है। यह कचरा ही मान्यताएँ, कृत्रिमता तथा राग-द्वेषादि बढा़ता है और अंत में ये मान्यताएँ ही दुःख में बढा़वा करती हैं। अतः साधक को चाहिये कि वह सदैव जागृत रहकर सत्पुरुषों के सत्संग सेम् ज्ञानी के सान्निध्य में रहकर परम तत्त्व परमात्मा को पाने का परम पुरुषार्थ करता रहे।

संसार आँख और कान द्वारा अंदर घुसता है। जैसा सुनोगे वैसे बनोगे तथा वैसे ही संस्कार बनेंगे। जैसा देखोगे वैसा स्वभाव बनेगा। जो साधक सदैव आत्म-साक्षात्कारी महापुरुष का ही दर्शन व सत्संग-श्रवण करता है उसके हृदय में बसा हुआ महापुरुषत्व भी देर-सवेर जागृत हो जाता है। महारानी मदालसा ने अपने बच्चों में ब्रह्मज्ञान के संस्कार भर दिये थे। छः में से पाँच बच्चों को छोटी उम्र में ही ब्रह्मज्ञान हो गया था। ब्रह्मज्ञान हो गया था। ब्रह्मज्ञान का सत्संग काम, क्रोध, लोभ, राग, द्वेष, आसक्ति और दूसरी सब बेवकूफियाँ छुडाता है, कार्य करने की क्षमता बढाता है, बुद्धि सूक्ष्म बनाता है तथा भगवद्ज्ञान में स्थिर करता है। ज्ञानवान के शिष्य के समान अन्य कोई सुखी नहीं है और वासनाग्रस्त मनुष्य के समान अन्य कोई दुःखी नहीं है। इसलिये साधक को गुरुपूनम के दिन गुरु के द्वार जाकर, सावधानीपूर्वक सेवा करके, सत्संग का अमृतपान करके अपना भाग्य बनाना चाहिए।

राग-द्वेष छोडकर गुरु की गरिमा को पाने का पर्व माने गुरुपूर्णिमा तपस्या का भी द्योतक है। ग्रीष्म के तापमान से ही खट्टा आम मीठा होता है। अनाज की परिपक्वता भी सूर्य की गर्मी से होती है। ग्रीष्म की गर्मी ही वर्षा का कारण बनती है। इसप्रकार संपूर्ण सृष्टि के मूल में तपस्या निहित है। अतः साधक को भी जीवन में तितिक्षा, तपस्या को महत्व देना चाहिए। सत्य, संयम और सदाचार के तप से अपनी आंतर चेतना खिल उठती है जबकि सुख-सुविधा का भोग करनेवाला साधक अंदर से खोखला हो जाता है। व्रत-नियम से इन्द्रियाँ तपती हैं तो अंतःकरण निर्मल बनता है और मेनेजर अमन बनता है। परिस्थिति, मन तथा प्रकृति बदलती रहे फिर भी अबदल रहनेवाला अपना जो ज्योतिस्वरुप है उसे जानने के लिए तपस्या करो। जीवन मैं से गलतियों को चुन-चुनकर निकालो, की हुई गलती को फिर से न दुहराओ। दिल में बैठे हुए दिलबर के दर्शन न करना यह बडे-में-बडी गलती है। गुरुपूर्णिमा का व्रत इसी गलती को सुधारने का व्रत है।

शिष्य की श्रद्धा और गुरु की कृपा के मिलन से ही मोक्ष का द्वार खुलता है। अगर सदगुरु को रिझाना चाहते हो तो आज के दिन-गुरुपूनम के दिन उनको एक दक्षिणा जरूर देनी चाहिए।

चातुर्मास का आरम्भ भी आज से ही होता है। इस चातुर्मास को तपस्या का समय बनाओ। पुण्याई जमा करो। आज तुम मन-ही-मन संकल्प करो। आज की पूनम से चार मास तक परमात्मा के नाम का जप-अनुष्ठान करूँगा.... प्रतिदिन त्रिबंधयुक्त 10 प्राणायाम करुँगा। (इसकी विधि आश्रम से प्रकाशित 'ईश्वर की ओर' पुस्तक के पृष्ठ नं. 55 पर दी गयी है।).... शुक्लपक्ष की सभी व कृष्णपक्ष की सावन से कार्तिक माह के मध्य तक की चार एकादशी का व्रत करूँगा.... एक समय भोजन करूँगा, रात्रि को सोने के पहले 10 मिनट 'हरिः ॐ...' का गुंजन करुँगा.... किसी आत्मज्ञानपरक ग्रंथ (श्रीयोगवाशिष्ठ आदि) का स्वाध्याय करूँगा.... चार पूनम को मौन रहूँगा.... अथवा महीने में दो दिन या आठ दिन मौन रहूँगा.... कार्य करते समय पहले अपने से पूछूँगा कि कार्य करनेवाला कौन है और इसका आखिरी

परिणाम क्या है ? कार्य करने के बाद भी कर्त्ता-धर्त्ता सब ईश्वर ही है, सारा कार्य ईश्वर की सत्ता से ही होता है - ऐसा स्मरण करूँगा। यही संकल्प-दान आपकी दक्षिणा हो जायेगी।

इस पूनम पर चातुर्मास के लिए आप अपनी क्षमता के अनुसार कोई संकल्प अवश्य करो।

आप कर तो बहुत सकते हो आपमें ईश्वर का अथाह बल छुपा है किंतु पुरानी आदत है कि 'हमसे नही होगा, हमारे में दम नहीं है। इस विचार को त्याग दो। आप जो चाहो वह कर सकते हो। आज के दिन आप एक संकल्प को पूरा करने के लिए तत्पर हो जाओ तो प्रकृति के वक्षःस्थल में छुपा हुआ तमाम भंडार, योग्यताओं का खजाना तुम्हारे आगे खुलता जायेगा। तुम्हें अदभुत शौर्य, पौरुष और सफलताओं की प्राप्ति होगी।

तुम्हारे रुपये-पैसे, फल-फूल आदि की मुझे आवश्यकता नहीं है किंतु तुम्हारा और तुम्हारे द्वारा किसी का कल्याण होता है तो बस, मुझे दक्षिणा मिल जाती है, मेरा स्वागत हो जाता है।

ब्रह्मवेत्ता सदगुरुओं का स्वागत तो यही है कि उनकी आज्ञा में रहें। वे जैसा चाहते हैं उस ढंग से अपना जीवन-मरण के चक्र को तोडकर फेंक दें और मुक्ति का अनुभव कर लें।

सत् शिष्य के लक्षण

सतशिष्य के लक्षण बताते हुए कहा गया हैः

अमानमत्सरो दक्षो निर्ममो दृढसौहृदः। असत्वरोर्थजिज्ञासुः अनसूयुः अमोघवाक॥

'सतशिष्य मान और मत्सर से रहित, अपने कार्य में दक्ष, ममतारहित गुरु में दृढ प्रीति करनेवाला, निश्चल चित्तवाला, परमार्थ का जिज्ञासु तथा ईर्ष्यारहित और सत्यवादी होता है।'

इस प्रकार के नौ-गुणों से जो सत शिष्य सुसज्जित होता है वह सदगुरु के थोडे-से उपदेश मात्र से आत्म-साक्षात्कार करके जीवन्मुक्त पद में आरुढ हो जाता है।

ब्रह्मवेत्ता महापुरुष का सान्निध्य साधक के लिए नितांत आवश्यक है। साधक को उनका सान्निध्य मिल जाय तो भी उसमें यदि इन नौ-गुणों का अभाव है तो साधक को ऐहिक लाभ तो जरूर होता है, किंतु आत्म-साक्षात्कार के लाभ से वह वंचित रह जाता है।

अमानित्व, ईर्ष्या का अभाव तथा मत्सर का अभाव - इन सदगुणों के समावेश से साधक तमाम दोषों से बच जाता है तथा साधक का तन और मन आत्मविश्रांति पाने के काबिल हो जाता है।

सतशिष्यों का यहाँ स्वभाव होता हैः वे आप अमानी रहते हैं और दूसरों को मान देते हैं। जैसे, भगवान राम स्वयं अमानी रहकर दूसरों को मान देते थे।

साधक को क्या करना चाहिए ? वह अपनी बराबरी के लोगों को देखकर ईर्ष्या न करें, न अपने से छोटों को देखकर अहंकार करे और न ही अपने से बडों के सामने कुंठित हो, वरन सबको गुरु का कृपापात्र समझकर, सबसे आदरपूर्ण व्यवहार करें, प्रेमपूर्ण व्यवहार करें ऐसा करने से साधक धीरे-धीरे मान, मत्सर और ईर्ष्यासहित होने लगता है। खुद को मान मिले ऐसी इच्छा रखने पर मान नहीं मिलता है तो दुःख होता है और मान मिलता है तब सुखाभास होता है तथा नश्वर मान की इच्छा और बढती है । इस प्रकार मान की इच्छा को गुलाम बनाती है जबकि मान की इच्छा से रहित होने से मनुष्य स्वतंत्र बनता है। इसलिए साधक को हमेशा मानरहित बनने की कोशिश करनी चाहिये। जैसे, मछली जाल में फँसती है तब छटपटाती है, ऐसे ही जब साधक प्रशंसकों के बीच में आये तब उसका मन छटपटाना चाहिये। जैसे, लुटेरों के बीच आ जाने पर सज्जन आदमी जल्दी से वहाँ से खिसकने की

कोशिश करता है ऐसे ही साधक को प्रशंसकों प्रलोभनों और विषयों से बचने की कोशिश करनी चाहिए।

जो तमोगुणी व्यक्ति होता है वह चाहता है कि 'मुझे सब मान दें और मेरे पैरों तले सारी दुनिया रहे।' जो रजोगुणी व्यक्ति होता है वह कहता है कि 'हम दूसरों को मान देंगे तो वे भी हमें मान देंगे।' ये दोनों प्रकार के लोग प्रत्यक्ष या परोक्षरूप से अपना मान बढाने की ही कोशिश करते हैं। मान पाने के लिये वे सम्बंधों के तंतु जोडते ही रहते हैं और इससे इतने बहिर्मुख हो जाते हैं कि जिससे सम्बंध जोडना चाहिये उस अंतर्यामी परमेश्वर के लिये उनको फुर्सत ही नही मिलती और आखिर में अपमानित होकर जगत से चले जाते हैं इअसा न हो इसलिये साधक को हमेशा याद रखना चाहिये कि चाहे कितना भी मान मिल जाय लेकिन मिलता तो है इस नश्वर शरीर को ही और शरीर को अंत में जलाना ही है तो फिर उसके लिए क्यों परेशान होना ?

संतों ने ठीक ही कहा हैः

मान पुडी़ है जहर की, खाये सो मर जाये ।
चाह उसी की राखता, वह भी अति दुःख पाय॥

एक बार बुद्ध के चरणों में एक अपरिचित युवक आ गिरा और दंडवत् प्रणाम करने लगा।

बुद्धः "अरे अरे, यह क्या कर रहे हो ? तुम क्या चाहते हो? मैं तो तुम्हें जानता तक नहीं।"

युवकः "भन्ते! खड़े रहकर तो बहुत देख चुका। आज तक अपने पैरों पर खडा़ होता रहा इसलिये अहंकार भी साथ में खडा़ ही रहा और सिवाय दुःख के कुछ नहीं मिला। अतः आज मैं आपके श्रीचरणों में लेटकर विश्रांति पाना चाहता हूँ।"

अपने भिक्षुकों की ओर देखकर बुद्ध बोलेः "तुम सब रोज मुझे गुरु मानकर प्रणाम करते हो लेकिन कोई अपना अहं न मिटा पाया और यह अनजान युवक आज पहली बार आते ही एक संत के नाते मेरे सामने झुकते-झुकते अपने अहं को मिटाते हुए, बाहर की आकृति का अवलंबन लेते हुए अंदर निराकार की शान्ति में डूब रहा है।"

इस घटना का यही आशय समझना है कि सच्चे संतों की शरण में जाकर साधक को अपना अहंकार विसर्जित कर देना चाहिये। ऐसा नहीं कि रास्ते जाते जहाँ-तहाँ आप लंबे लेट जायें।

अमानमत्सरो दक्षो....

साधक को चाहिये कि वह अपने कार्य में दक्ष हो। अपना कार्य क्या है? अपना कार्य है कि प्रकृति के गुण-दोष से बचकर आत्मा में जगना और इस कार्य में दक्ष रहना अर्थात डटे रहना, लगे रहना। उस निमित्त जो भी सेवाकार्य करना पड़े उसमें दक्ष रहो। लापरवाही, उपेक्षा या बेवकूफी से कार्य में विफल नहीं होना चाहिये, दक्ष रहना चाहिये। जैसे, ग्राहक कितना भी दाम कम करने को कहे, फिर भी लोभी व्यापारी दलील करते हुए अधिक-से-अधिक मुनाफा कमाने की कोशिश करता है, ऐसे ही ईश्वर-प्राप्ति के मार्ग में चलते हुए कितनी ही प्रतिकूल परिस्थितियाँ आ जायें, फिर भी साधक को अपने परम लक्ष्य में डटे रहना चाहिये। सुख आये या दुःख, मान हो या अपमान, सबको देखते जाओ.... मन से विचारों को, प्राणों की गति को देखने की कला में दक्ष हो जाओ।

नौकरी कर रहे हो तो उसमें पूरे उत्साह से लग जाओ, विद्यार्थी हो तो उमंग के साथ पढो़, लेकिन व्यावहारिक दक्षता के साथ-साथ आध्यात्मिक दक्षता भी जीवन में होनी चाहिए। साधक को सदैव आत्मज्ञान की ओर आगे बढना चाहिए। कार्यों को इतना नही बढाना चाहिये कि आत्मचिंतन का समय ही न मिले। सम्बंधोम् को इतना नहीं बढाना चाहिए कि जिसकी सत्ता से सम्बंध जोडे जाते हैं उसी का पता न चले।

एकनाथ जी महाराज ने कहा हैः 'रात्रि के पहले प्रहर और आखिरी प्रहर में आत्मचिंतन करना

चाहिये। कार्य के प्रारंभ में और अंत में आत्मविचार करना चाहिये।' जीवन में इच्छा उठी और पूरी हो जाय तब जो अपने-आपसे ही प्रश्न करे किः 'आखिर इच्छापूर्ति से क्या मिलता है?' वह है दक्ष। ऐसा करने से वह इच्छानिवृत्ति के उच्च सिंहासन पर आसीन होनेवाले दक्ष महापुरुष की नाईं निर्वासनिक नारायण में प्रतिष्ठित हो जायेगा।

अगला सदगुण है। ममतारहित होना। देह में अहंता और देह के सम्बंधियों में ममता रखता है, उतना ही उसके परिवार वाले उसको दुःख के दिन दिखा देते हैं। अतः साधक को देह और देह के सम्बंधों से ममतारहित बनना चाहिये।

आगे बात आती है- गुरु में दृढ़ प्रीति करने की। मनुष्य क्या करता है? वास्तविक प्रेमरस को समझे बिना संसार के नश्वर पदार्थों में प्रेम का रस चखने जाता है और अंत में हताशा, निराशा तथा पश्चाताप की खाई में गिर पडता है। इतने से भी छुटकारा नहीं मिलता। चौरासी लाख जन्मों की यातनाएँ सहने के लिये उसे बाध्य होना पडता है। शुद्ध प्रेम तो उसे कहते हैं जो भगवान और गुरु से किया जाता है। उनमें दृढ प्रीति करने वाला साधक आध्यात्मिकता के शिखर पर शीघ्र ही पहुँच जाता है। जितना अधिक प्रेम, उतना अधिक समर्पण और जितना अधिक समर्पण, उतना ही अधिक लाभ। कबीर जी ने कहा हैः

प्रेम न खेतों उपजे, प्रेम न हाट बिकाय।
राजा चहो प्रजा चहो, शीश दिये ले जाये॥

शरीर की आसक्ति और अहंता जितनी मिटती जाती है, उतना ही स्वभाव प्रेमपूर्ण बनता जाता है। इसीलिए छोटा-सा बच्चा, जो निर्दोष होता है, हमें बहुत प्यारा लगता है क्योंकि उसमें देहासक्ति नहीं होती। अतः शरीर की अहंता और आसक्ति नहीं होती। अतः शरीर की अहंता और आसक्ति छोड़कर गुरु में, प्रभु में दृढ़ प्रीति करने से अंतःकरण शुद्ध होता है। 'विचारसागर' ग्रन्थ में भी आता हैः 'गुरु में दृढ़ प्रीति करने से मन का मैल तो दूर होता ही है, साथ ही उनका उपदेश भी शीघ्र असर करने लगता है, जिससे मनुष्य की अविद्या और अज्ञान भी शीघ्र नष्ट हो जाता है।'

इस प्रकार गुरु में जितनी-जितनी निष्ठा बढ़ती जाती है, जितना-जितना सत्संग पचता जाता है, उतना-उतना ही चित्त निर्मल व निश्चिंत होता जाता है।

इस प्रकार परमार्थ पाने की जिज्ञासा बढ़ती जाती है, जीवन में पवित्रता, सात्विक्ता, सच्चाई आदि गुण प्रकट होते जाते हैं और साधक ईर्ष्यारहित हो जाता है।

जिस साधक का जीवन सत्य से युक्त, मान, मत्सर, ममता और ईर्ष्या से रहित होता है, जो गुरु में दृढ़ प्रीतिवाला, कार्य में दक्ष तथा निश्चल चित्त होता है, परमार्थ का जिज्ञासु होता है - ऐसा नौ-गुणों से सुसज्ज साधक शीघ्र ही गुरुकृपा का अधिकारी होकर जीवन्मुक्ति के विलक्षण आनन्द का अनुभव कर लेता है अर्थात परमात्म-साक्षात्कार कर लेता है।

गुरुपूजन का पर्व

गुरुपूर्णिमा अर्थात् गुरु के पूजन का पर्व ।

गुरुपूर्णिमा के दिन छत्रपति शिवाजी भी अपने गुरु का विधि-विधान से पूजन करते थे।

.....किन्तु आज सब लोग अगर गुरु को नहलाने लग जायें, तिलक करने लग जायें, हार पहनाने लग जायें तो यह संभव नहीं है। लेकिन षोडशोपचार की पूजा से भी अधिक फल देने वाली मानस पूजा

करने से तो भाई ! स्वयं गुरु भी नही रोक सकते। मानस पूजा का अधिकार तो सबके पास है।

"गुरुपूर्णिमा के पावन पर्व पर मन-ही-मन हम अपने गुरुदेव की पूजा करते हैं.... मन-ही-मन गुरुदेव को कलश भर-भरकर गंगाजल से स्नान कराते हैं.... मन-ही-मन उनके श्रीचरणों को पखारते हैं.... परब्रह्म परमात्मस्वरूप श्रीसद्गुरुदेव को वस्त्र पहनाते हैं.... सुगंधित चंदन का तिलक करते है.... सुगंधित गुलाब और मोगरे की माला पहनाते हैं.... मनभावन सात्विक प्रसाद का भोग लगाते हैं.... मन-ही-मन धूप-दीप से गुरु की आरती करते हैं...."

इस प्रकार हर शिष्य मन-ही-मन अपने दिव्य भावों के अनुसार अपने सद्गुरुदेव का पूजन करके गुरुपूर्णिमा का पावन पर्व मना सकता है। करोडों जन्मों के माता-पिता, मित्र-सम्बंधी जो न से सके, सद्गुरुदेव वह हँसते-हँसते दे ड़ालते हैं।

'हे गुरुपूर्णिमा ! हे व्यासपूर्णिमा ! तु कृपा करना.... गुरुदेव के साथ मेरी श्रद्धा की डोर कभी टूटने न पाये.... मैं प्रार्थना करता हूँ गुरुवर ! आपके श्रीचरणों में मेरी श्रद्धा बनी रहे, जब तक है जिन्दगी.....

वह भक्त ही क्या जो तुमसे मिलने की दुआ न करे ?
भूल प्रभु को जिंदा रहूँ कभी ये खुदा न करे ।
हे गुरुवर !
लगाया जो रंग भक्ति का, उसे छूटने न देना ।
गुरु तेरी याद का दामन, कभी छूटने न देना ॥
हर साँस में तुम और तुम्हारा नाम रहे ।
प्रीति की यह डोरी, कभी टूटने न देना ॥
श्रद्धा की यह डोरी, कभी टूटने न देना ।
बढ़ते रहे कदम सदा तेरे ही इशारे पर ॥
गुरुदेव ! तेरी कृपा का सहारा छूटने न देना।
सच्चे बनें और तरक्की करें हम,
नसीबा हमारी अब रूठने न देना।
देती है धोखा और भुलाती है दुनिया,
भक्ति को अब हमसे लुटने न देना ॥
प्रेम का यह रंग हमें रहे सदा याद,
दूर होकर तुमसे यह कभी घटने न देना।
बड़ी मुश्किल से भरकर रखी है करुणा तुम्हारी....
बड़ी मुश्किल से थामकर रखी है श्रद्धा-भक्ति तुम्हारी....
कृपा का यह पात्र कभी फूटने न देना ॥
लगाया जो रंग भक्ति का उसे छूटने न देना ।
प्रभुप्रीति की यह डोर कभी छूटने न देना ॥

आज गुरुपूर्णिमा के पावन पर्व पर हे गुरुदेव ! आपके श्रीचरणों में अनंत कोटि प्रणाम.... आप जिस पद में विश्रांति पा रहे हैं, हम भी उसी पद में विशांति पाने के काबिल हो जायें.... अब आत्मा-परमात्मा से जुदाई की घड़ियाँ ज्यादा न रहें.... ईश्वर करे कि ईश्वर में हमारी प्रीति हो जाय.... प्रभु करे कि प्रभु के नाते गुरु-शिष्य का सम्बंध बना रहे...'